‘पंचतंत्र’ की कथाओं के आधार पर विद्यालयी प्रशासन एवं शिक्षा की सीख
एक विश्लेषण

लोकेश जैन*

प्रबंधकीय सिद्धांत व व्यवहारों में हमारे भारतीय ऋषि-मुनियों एवं प्रबुद्ध विचारकों द्वारा रचित ग्रंथों एवं साहित्य में प्रबंधकीय शिक्षण-प्रशिक्षण के प्रतिमान किसी न किसी रूप में प्रस्फुटित होते रहे हैं, जैसे—‘गीता’, ‘चाणक्य नीति’, ‘विदुर नीति’ और ‘शुक्रनीति’, जैन व अन्य प्रमुख भारतीय दर्शन, जैसे— ‘पंचतंत्र’, ‘हितोपदेश’ आदि। ‘पंचतंत्र’ की लोकप्रिय कथाएँ भारतीय संस्कृत साहित्य की अनमोल धरोहर हैं, जिसमें युक्तियुक्त जीवनयापन हेतु नीतिगत ज्ञान एवं कौशल निहित हैं, जो शिक्षण जगत से जुड़े विविध हितधारकों, विद्यालयी प्रशासक, शिक्षक, विद्यार्थी आदि को ‘राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020’ के अनुसार ज्ञान, कौशल एवं मूल्यों के विकास हेतु प्रेरक वातावरण उपलब्ध करा सकती हैं। यह लेख शिक्षण व्यवस्था के प्रबंधन की दृष्टि से मुख्य रूप से ‘पंचतंत्र’ के तृतीय खंड काकोलूकीयम में वर्णित नीति-कथाओं पर केंद्रित है, तथापि समग्रता की दृष्टि से प्रथम (मित्रभेद), द्वितीय (मित्रप्राप्ति) व चतुर्थ खण्ड (लब्धप्रणाश) का संदर्भ भी यथास्थान लिया गया है। इसके कथानकों व नीतिगत श्लोकों में गर्भित ज्ञान शिक्षण संस्थाओं का सोद्देश्य संचालन (मेनेजमेंट बाय ऑब्जेक्टिव) करने, साथियों की सक्रिय सहभागिता सुनिश्चित करने, शिक्षा के योग्य वातावरण का निर्माण करने एवं हितधारकों के क्षमतावर्धन में पथ-प्रदर्शक की भूमिका अदा कर सकता है।

भारतीय ऋषि-मुनियों, प्रबुद्ध विचारकों व चिंतकों के अगाध ज्ञान भंडारों में प्रबंधकीय शिक्षण-प्रशिक्षण के प्रतिमान किसी न किसी रूप में प्रस्फुटित होते रहे हैं, जैसे— *गीता, चाणक्य नीति, विदुर नीति, शुक्रनीति*, जैन व अन्य प्रमुख भारतीय दर्शन इत्यादि। इनमें से ‘पंचतंत्र’ भी एक है। ‘पंचतंत्र’ कथानक के आमुख में कहा गया है कि दक्षिण राज्य के महिलारोप्य नगर का राजा अमरसिंह विद्वानों का भरपूर आदर करता था, किंतु अपने तीन पुत्रों— बहुशक्ति, उग्रशक्ति और अनंतशक्ति की उद्दंडता व विद्या विमुखता से अत्यंत दुखी व चिंतित था। विद्वान दरबारियों की राय पर उसने अपने पुत्रों को शिक्षित करने का कार्यभार यशस्वी व वरिष्ठ विद्वान विष्णु शर्मा को सौंपा, जिन्होंने उन्हें छह माह के अल्प समय में शिक्षित करने का कार्य कथानकों के माध्यम से किया ताकि वे राज्य संचालन की शिक्षा ही नहीं अपितु आवश्यक ज्ञान भी प्राप्त कर सकें।

*प्रोफेसर, ग्रामीण प्रबंधन, ग्रामीण प्रबंध अध्ययन केंद्र, गुजरात विद्यापीठ, आश्रम रोड, रांधेजा-गांधीनगर, गुजरात 382620

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और 'पंचतंत्र' की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में निहित प्रबंधकीय प्रतिमानों के संदर्भ में एक अवलोकन

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 विद्यार्थी अभिमुख, परिणामोन्मुखी तथा समाजलक्षी समन्वित व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें बाल शिक्षण व्यवस्था को सुनियोजित करने के साथ-साथ कौशल्य अभिरुचि एवं कुशलताओं के गुणात्मक विकास का प्रावधान किया गया है। इस नीति द्वारा उच्च शिक्षण स्तर पर विद्यार्थियों की आवश्यकता व परिस्थिति के अनुरूप शिक्षण व्यवस्था को लोचशील व बहुआयामी बनाने का प्रयास किया गया है। सार रूप में कहें तो यह *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* समाज को वे मानव संसाधन प्रदान करने का संकल्प करती है, जो सृजनशील और आत्मनिर्भर पथ के अनुगामी हों। (जैन और दीक्षित 2021)

सारभूत 'पंचतंत्र' कथानक मित्रभेद, मित्रलाभ या मित्रसंप्राप्ति, काकोलूकीयम, लब्धप्रणाश तथा अपरीक्षित कारक पर आधारित हैं। शिक्षण-प्रशिक्षण की इस अनूठी पद्धति से लेखक विष्णु शर्माजी दक्षिणी राज्य महिलारोप्य के राजा अमरशक्ति के तीन उद्दंड व शिक्षा विमुख पुत्रों को जीवनोपयोगी, राजतंत्र संचालन संबंधी ज्ञान से छह माह के अल्प समय में शिक्षित-प्रशिक्षित कर सके।

लोक व्यवहार के ज्ञान के अभाव में व्यक्ति 'वेदिया पशु' माना जाता है। कहा भी है— "काग पढ़ाए पींजरा पढ़ गए चारों वेद। जब सुधि आई कुटुंब की, तो रहे ढेड़ के ढेड़।" 'पंचतंत्र' कथानक के पात्र यद्यपि पशुपक्षी हैं, किंतु इन कथाओं में मानव ही केंद्र में हैं, इन गुणों के कारण कथानक पूर्णरूपेण मानव कल्याण लक्षी प्रतीत होता है। सियार (चातुर्य, नीतिज्ञ निपुणता), शेर (ताकतवर किंतु कम बुद्धिमान), कौआ (सियार के समानांतर चालाक, चतुर), बंदर (स्वाभाविक चंचलता), गधा (मूर्ख यथा मनुष्यों में शास्त्रज्ञ पंडित), उल्लू (धूर्तता में आगे), बगुला (स्वार्थपरक) आदि में हमें अपना ही प्रतिबिंब दिखाई देता है, जो हमें जीवन को सुनियोजित रूप से संचालित करने की महत्वपूर्ण सीख व प्रेरणा प्रदान करता है।

प्रथम भाग (1) में ऐसी क्रमबद्ध 24 कथाएँ हैं, जो मित्रों में मनमुटाव एवं अलगाव के कारण, परिस्थिति विश्लेषण, निर्णय एवं परिणामों के माध्यम से लोकोपयोगी निर्णयन क्षमता में वृद्धि करने में सहायक बनती हैं। वे कहते हैं कि मित्रता सदैव समानशील व रुचि वाले व्यक्तियों के साथ करनी चाहिए। यह नीति निर्देशित करती है—

यो अमित्रं कुरुते मित्रं, वीर्याभि अधिकं आत्मनः।
स करोति न संदेहः स्वयं हि विष भक्षणम्।। 200
पंचतंत्र भाग-4

यदि व्यक्ति अथवा संगठन अपनों को नीचा दिखाने के लिए अथवा निहित स्वार्थों की सिद्धि के लिए अपने से अधिक ताकतवर प्रतिस्पर्धी को अपना मित्र बनाने की मूर्खता करता है तो वह अपने ही हाथ से जहर खाता है। इससे व्यक्ति व संस्थान अंततः विनाश को प्राप्त होते हैं। प्रतिस्पर्धी बना मित्र एक दिन आपके अस्तित्व को भी निगल जाता है। व्यावसायिक संस्थान हो या शैक्षणिक संस्थान, यदि उन्हें प्रगति करनी है तो वे अपने साथियों या हितधारकों के साथ अकारण द्वेष न रखें, क्योंकि जो

व्यक्ति दूसरों के दुख से प्रसन्न होता है, वह अपने भी विनाश की परवाह नहीं करता। किंतु यह किसी भी परिस्थिति में व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के लिए कल्याणकारी नहीं हो सकता।

दूसरा भाग आवश्यकता के समय मित्र के मिल जाने से क्या लाभ होता है, इसका बोध कराता है। विपत्ति में मित्र का साथ मिलना और मित्र का घर में आना स्वर्ग से भी अधिक सुख का आनंद देता है। इस भाग में दी गई सात कहानियों का सार यह है कि व्यक्ति को अपनी जीभ पर काबू रखकर लोभ से दूर रहना चाहिए, नहीं तो विपत्ति में फँसना तय है। विपत्ति में फँसे मित्र की सहायता करनी चाहिए, किंतु सहायता प्राप्त करने वाले को भी ध्यान रखना चाहिए कि सहायता करने वाले मित्र को कोई हानि न हो। संपत्ति के लोभ में आकर जो व्यक्ति प्रतिस्पर्धी पर विश्वास करता है, उसके जीवन का वहीं अंत हो जाता है। संस्थानों की संचालन व्यवस्था को इस तथ्य पर ध्यान देते हुए निरंतर सावधान रहने की आवश्यकता है। मित्रता बनाए रखने के लिए गुप्त रूप से मित्र की सहायता करते रहना चाहिए।

मित्र के गुणों को पहचानना और उनका आदर करना मित्रता को प्रगाढ़ बनाता है। सम्यक भाव जीवन में स्थिरता प्रदान करता है। इस दुनिया में न तो कोई किसी का मित्र होता है और न ही परम प्रतिस्पर्धी। काम बनने और बिगड़ने से प्रतिस्पर्धिता और मित्रता की जाँच की जाती है।

विद्यार्थियों को सीखना चाहिए कि काम उद्यम से ही सिद्ध होते हैं, केवल मनोरथ करने से नहीं, भाग्य के भरोसे बैठे रहने से नहीं। विपरीत एवं कठिन परिस्थिति में भाग्य के विपरीत हो जाने पर भी धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए। 'पंचतंत्र' की कहानियों के कथानकों से विद्यार्थी, शिक्षक, व्यवस्थापक संगठन, एकता की शक्ति, बाहरी व्यक्ति व चापलूसों के बहकावे में आकर अपनों पर शक न करना, मित्रों के साथ रहकर महत्तम समाजोपयोगी कुशलताओं का विकास तथा उपलब्ध मानव संसाधन का समुचित उपयोग करना आदि सीख सकते हैं।

काकोलूकीयं में वर्णित नीतिगत प्रतिमान एवं प्रबंधकीय व्यूह रचनाओं के निर्माण में उनकी प्रासंगिकता

संधि व विग्रह नीति के विविध पक्षों के रूप में 'कौआ और उल्लुओं की कथा' के माध्यम से प्रबंधकीय व्यूह रचनाओं की समझ 'पंचतंत्र' के तृतीय खंड काकोलूकीयं में निहित है। प्रतिस्पर्धिता व मित्रता की कसौटी के मद्देनजर संचालकों को अपने साथियों, कर्मचारियों, सहकर्मियों के साथ कब, कैसा व्यवहार करना चाहिए, की सीख यहाँ से ली जा सकती है। प्रायः स्वार्थी प्रतिस्पर्धी मित्रता का दिखावा करने की नीति अपनाकर मौका देखकर प्रतिद्वंद्वी का सर्वनाश कर देता है। नीति कहती है—

यः उपेक्षेत शत्रुं स्वं प्रसरन्तं यदृच्छया।
रोगं चालस्य संयुक्तः स शनैः हन्यते।। 137।।
पंचतंत्र तृतीय खंड

जो मनुष्य स्वतंत्रता से बढ़ते हुए अपने प्रतिस्पर्धी की और रोग से उत्पन्न आलस्य के कारण उपेक्षा कर देता है, वह धीरे-धीरे उसी प्रतिस्पर्धी या रोग के द्वारा मारा जाता है, फिर चाहे वह कितना ही बलवान क्यों न हो।

शिक्षण संस्थान जो अपने परंपरागत ढाँचे में ही रूढ़िगत रूप से शिक्षण व्यवस्था का संचालन कर रहे हैं, नवीन परिवर्तनों के अनुरूप स्वयं की क्षमताओं का विकास करने में उदासीनता दिखा रहे हैं, उन्हें सावधान होना होगा तथा तदनुरूप अपनी दक्षताओं व व्यूह रचना का निर्माण करना होगा, जिसके नीतिगत प्रतिमानों की सीख इस कथानक से ली जा सकती है—

यद्यपि उल्लुओं का राजा अरिमर्दन कौओं के राज मेघवर्ण से अधिक शक्तिशाली था, किंतु वह आलस्य में रहते हुए, शक्ति के मद में रहते हुए अपने मंत्री की सलाह को तवज्जो नहीं देता है, मंत्रियों की कार्यकुशलता व बुद्धिमत्ता का सही परीक्षण नहीं कर पाता है, बहुमत के सामने उचित विचार की उपेक्षा करता है, प्रतिस्पर्धी के शरणार्थी दूत पर अंधा विश्वास करते हुए उसे अपने समूह के अंदर प्रविष्ट होने देता है, अपनी आंतरिक व्यूह रचना परिवर्तित करता है एवं दूसरी तरफ उल्लुओं के आक्रमण से पीड़ित कौओं का राजा अपने मंत्रियों के साथ बैठकर प्रतिस्पर्धी की शक्ति और उसके द्वारा पहुँचाए जा रहे सतत नुकसान के बारे में विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से परीक्षण करता है। वह स्थिति का तटस्थ मूल्यांकन एवं समूह के सभी सदस्यों की सक्रिय सहभागिता सुनिश्चित करते हुए सभी के समक्ष अपने विचार रखता है कि, "हमारा प्रतिस्पर्धी शक्तिशाली, उद्यमी और अवसर को पहचानने वाला है, इसलिए वह रोज रात होते ही हमारे लोगों को मारता है, अब आप लोग बताइए कि हमें क्या उपाय करना चाहिए? हम लोग रात को देख नहीं सकते और न ही हम उनके दुर्ग को जानते हैं, जिससे दिन में जाकर उन्हें मारा जा सके। इसलिए इस विषय में क्या करना उचित होगा? संधि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय एवं द्वेधीभाव नीति इन छह उपायों में से किसे काम में लाना चाहिए।" नीति कहती है कि राजा के पूछने पर जो मंत्री या मंत्रिमंडल सही सलाह नहीं देता अथवा चापलूसी के चलते मुँह-देखी बात करता है, उसे प्रतिस्पर्धी से भी अधिक घातक समझना चाहिए। यह नीति शिक्षण संस्थानों व संचालकों को बेहतर कार्यक्षम व पोषणाक्षम बना सकती है।

भारतीय साहित्य के एक अन्य ग्रंथ 'सुभाषितानि' में विद्यार्थियों को सचेत करते हुए कहा गया है— अलसस्य कुतो विद्या, अविद्यस्य कुतो धनम्। शिक्षार्थी के पाँच लक्षणों में भी स्पष्ट रूप से आलस्य त्याग की बहुत ही सुंदर सीख दी गई है—

काक चेष्टा, बको ध्यानं, श्वान निद्रा तथैव च।
अल्पहारी, गृहत्यागी, विद्यार्थी पंच लक्षणं।।

शिक्षण संस्थाएँ साधन संपन्न, उद्यमी, सुगम एवं सहज कार्य संस्कृति अनुलक्षी तथा उद्यमी बनें, शैक्षणिक ध्येयों की सिद्धि की कार्ययोजना में संबंधित सभी पक्षकारों की योग्य भागीदारी व भूमिका सुनिश्चित करें, अवसरों को पहचान कर समाज को उस दिशा में ले जाने हेतु अभिप्रेरणात्मक वातावरण उपलब्ध कराएँ, ताकि उसमें पहलवृत्ति का बीजांकुर हो सके, जिसमें नवान्वेष अथवा समाजोपयोगी नवप्रवर्तन वट वृक्ष की तरह आकार ले सके।

कौओं के राजा मेघवर्ण के पाँच मंत्री थे— उज्जीवी, संजीवी, अनुजीवी, प्रजीवी और चिरंजीवी। राजा के कहने पर इनमें से प्रत्येक ने अलग-अलग

नीतियाँ अपनाने में अपना पक्ष प्रस्तुत किया। उज्जीवी ने कहा कि यदि प्रतिस्पर्धी बलवान है और प्रहार के अवसरों से भली-भाँति परिचित है तो उसके साथ संधि करना ही उचित होगा। क्योंकि 'सबल प्रतिस्पर्धी के साथ टकराने से निर्बल का नाश हो जाता है।' एक अन्य नीति कहती है—

भूमिः मित्रं हिरण्य वा विग्रहस्य फलत्रयम्।
नास्त्येकं अपि यदि एषां विग्रहं न समाचरेत्।।138।।
पंचतंत्र तृतीय खंड

अर्थात विग्रह के फलस्वरूप यदि भूमि, मित्र या धन संपत्ति के किसी भी लाभ के मिलने की आशा न हो तो युद्ध नहीं करना चाहिए। यदि समय अनुकूल न हो तो बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह कछुए की तरह अपने अंगों को समेट ले और चुपचाप चोट पर चोट सह ले। इस प्रकार वह संधि की नीति का परामर्श देता है।

मेघवर्ण के कहने पर दूसरा मंत्री संजीवी इस पर अपने विचार रखते हुए कहता है कि क्रूर, लालची व अधर्मी प्रतिस्पर्धी से संधि कदापि उचित नहीं है। अपनी आत्मा, अस्मिता एवं मानवीय मूल्यों की कीमत पर कोई समझौता कदापि उचित नहीं, क्योंकि नीति कहती है—

क्रूरो लुब्धोलसोसत्यः प्रमादी भीरु अस्थिरः।
मूढ़ो युद्धावमन्ता च सुखेच्छेद्यो भवेत् रिपुः।। 140
पंचतंत्र तृतीय खंड

अर्थात क्रूर, लोभी, आलसी, झूठे, प्रमादी, डरपोक, अस्थिर, मूर्ख और अपने सैनिकों का अपमान करने वाले प्रतिस्पर्धियों को आसानी से निर्मूल किया जा सकता है। वह कहता है कि हमारे प्रतिस्पर्धी ने हमारा अपमान किया है। यदि हम उसके सामने संधि का प्रस्ताव करते तो वह अधिक क्रोध करेगा। दंड से वश में करने योग्य प्रतिस्पर्धी के सामने यदि शांति की चर्चा की जाए तो वह इसे अपना अपकार समझता है।

अलग-अलग विशिष्टता वाली शिक्षण संस्थाएँ यदि साथ मिलकर विद्यार्थी, समाज व राष्ट्र हित में समन्वित रूप से काम करती हैं तो राष्ट्र व समाज के हित में श्रेष्ठ परिणाम आ सकते हैं। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* के कार्यक्षम अमलीकरण पथ पर इसी उत्साह के साथ सभी हितधारकों को कदम से कदम मिलाकर संगठित व समन्वित होकर चलने की आवश्यकता है, क्योंकि यह राष्ट्रीय मिशन है, जिसकी सफलता सभी की सक्रिय रचनात्मक सहभागिता पर निर्भर है।

संजीवी का परामर्श सुनकर मेघवर्ण ने अनुजीवी से भी राय माँगी। उसने कहा कि हमारा प्रतिस्पर्धी बलवान और अत्यंत दुष्ट है तथा किसी भी तरह की मर्यादा को नहीं मानता। अतः उससे संधि और विग्रह दोनों ही उचित नहीं हैं। उसके सामने तो यान अर्थात पलायन ही उचित उपाय है। यह यान दो प्रकार का होता है— एक भयभीत होकर आत्मरक्षा के लिए पलायन तथा दूसरा विजय की कामना से प्रतिस्पर्धी पर आक्रमण हेतु पलायन।

शिक्षण संस्थानों का दुर्ग उनकी संचालन नीतियाँ हैं, जो वातावरण को अनुशासित रखती हैं, शैक्षणिक व शैक्षणोत्तर प्रवृत्तियों के संचालन को गति प्रदान करती हैं तथा विद्यार्थियों के चहुँमुखी विकास के लिए आवश्यक हैं। इस नीति को अपनाकर शिक्षण

संस्थान प्रतिस्पर्धा के समय में स्वयं को व अपने विद्यालय व विद्यार्थियों को तैयार कर सकते हैं। वर्तमान व भावी चुनौतियों का सामना करने के लिए यदि दुर्ग की सुरक्षा का अभिगम शिक्षा संस्थान अपने शिक्षकों व विद्यार्थियों को कुशल करने में अपनाएँ तो आमूलचूल परिवर्तन किए जा सकते हैं।

नीति कहती है कि, "यदि भेड़ा पीछे हटता है, तो अधिक ताकतवर प्रहार करने के लिए।" इसलिए अनुकूल समय की प्रतीक्षा व शक्ति संचय की तैयारी के लिए यान या पलायन उचित ही है।

विद्यार्थी वर्ग सीख ले कि चुनौतियों का सामना करने के लिए समुचित शक्ति संचय हेतु पीछे हटने की व्यूह रचना कारगर सिद्ध हो सकती है।

तत्पश्चात मेघवर्ण ने अगले मंत्री प्रजीवी से भी अपना मंतव्य व्यक्त करने को कहा। वह बोला कि महाराज मुझे तो संधि, विग्रह और यान तीनों ही उपाय उचित प्रतीत नहीं होते हैं। मुझे तो आसन अर्थात अपने दुर्ग में बैठकर प्रतिस्पर्धी के आक्रमण की प्रतीक्षा करना ही समुचित लगता है। नीतिकार कहते हैं—

स एव प्रच्युतः स्थानात् शुनापि परिभूयते।।

अर्थात मगर जल में रहते हुए गजराज को भी खींच लेता है तथा बाहर निकल आने पर मामूली कुत्ते से भी पराजित हो जाता है। अपने स्थान पर रहते हुए वह सैकड़ों प्रतिस्पर्धियों का सामना आसानी से कर लेता है। उसे पलायन की बजाए अपने दुर्ग की व्यवस्थाओं— योद्धा, अस्त्र, शस्त्र, रसद आदि सुरक्षात्मक उपायों पर ध्यान देकर अपने गढ़ में ही निवास करना चाहिए। युद्ध में यदि जीवित रहे तो साम्राज्य और मृत्यु हुई तो स्वर्ग मिलेगा।

इसके बाद अगले मंत्री चिरंजीवी ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि महोदय मुझे तो संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय आदि छह उपायों में संश्रय अर्थात मित्र बल का आश्रय ही उचित प्रतीत होता है, क्योंकि अकेला व्यक्ति कितना ही तेजस्वी क्यों न हो, वह अकेला असहाय हो जाता है, वायुविहीन स्थान में प्रज्ज्वलित अग्नि भी बुझ जाती है। अतः यहीं रहकर समर्थ का सहारा लेना उचित है। कहा भी गया है—

महाजनस्य संपर्कः कस्य न उन्नतिकारकः।
पद्मपत्रस्थितं तोयं धत्ते मुक्ताफलश्रियम।।144।।
पंचतंत्र तृतीय खंड

अर्थात महापुरुषों का सहयोग व सानिध्य पाकर किसकी उन्नति नहीं हो जाती? अर्थात महापुरुषों का सहयोग व सानिध्य पाकर हर किसी की उन्नति हो जाती है, जिस प्रकार जल की बूँद कमलपत्र का साथ पाकर मोती जैसी आभावान बन जाती है।

यदि आप स्थान छोड़कर चले जाएँगे, तो कोई भी किसी भी प्रकार से आपकी सहायता नहीं करेगा। जिस प्रकार जंगल के दावानल की सहायता पवन करता है, किंतु वही पवन दीपक को बुझा देता है। निर्बल का कोई मित्र नहीं होता।

चिरंजीवी का संश्रय का परामर्श सुनने के बाद मेघवर्ण ने अपने वयोवृद्ध, दूरदर्शी, संपूर्ण नीतिशास्त्र में पारंगत मंत्री स्थिरजीवी को प्रणाम कर उनकी राय प्रस्तुत करने का निवेदन किया।

स्थिरजीवी ने कहा कि सभी मंत्रियों ने नीतिसम्मत परामर्श ही दिए हैं, जो समय और परिस्थिति के अनुसार उपयोगी हैं। किंतु इस समय जो स्थिति है उसमें द्वैधीभाव (दुहरी चाल) को अपनाना श्रेयस्कर होगा अर्थात ऊपर से मित्रता का दिखावा करें, किंतु भीतर ही भीतर युद्ध की तैयारी करते रहें। हमें प्रतिस्पर्धी पर विश्वास नहीं करना चाहिए, किंतु प्रतिस्पर्धी को लोभ-लालच दिखाकर उसके हृदय में गहरा विश्वास उत्पन्न करना चाहिए। नीति कहती है कि जो मनुष्य प्रतिस्पर्धी, दुष्ट मित्र और अन्य लोगों पर आँख मूँदकर विश्वास कर लेता है, वह अधिक समय तक जीवित नहीं रहता। हमें अपना कार्य निष्कपट भाव से करना चाहिए, जिसमें गुरुता, देवत्व व ब्राह्मणत्व के गुण विद्यमान हों।

राजन आप द्वैधीभाव का आश्रय लेकर अपने स्थान पर भी बने रहेंगे और लोभ-लालच देकर अपने प्रतिस्पर्धी को भी उखाड़ फेकेंगे। यदि प्रतिस्पर्धी की कोई कमजोरी पता चल जाए तो उसे समूल उखाड़ने में समय नहीं लगेगा।

मेघवर्ण ने कहा कि तात मुझे तो उसके स्थान का भी पता नहीं, फिर उसकी कमजोरी कैसे ज्ञात कर पाऊँगा। स्थिरजीवी ने कहा कि वत्स, मैं अपने गुप्तचरों द्वारा उसके स्थान को अपितु दोषों की जानकारी भी प्रकट कर दूँगा। कहा गया है कि गाय आदि पशु गंध के द्वारा देखते हैं, ब्राह्मण वेद-शास्त्रों के द्वारा देखते हैं, राजा गुप्तचरों के माध्यम से देखते हैं, जबकि साधारण लोग आँखों के माध्यम से ही देख पाते हैं।

शिक्षकगण अपने विद्यार्थियों की उन कमजोरियों को ज्ञात करने में सहायता कर सकते हैं, जो उन्हें भ्रमित करती हैं, शिक्षण व सीखने की प्रक्रिया से दूर ले जाती हैं, हताशा की ओर ले जाती हैं।

यह कथानक नीतिगत रूप से निर्देशित करता है कि विद्यार्थी संगठित, सुनियोजित, सुयोग्य व दूरदर्शी प्रयास के द्वारा ही अपने लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। इसलिए आवश्यक है कि वे अपनी दक्षताओं और कौशलों को उत्तरोत्तर परिष्कृत एवं परिमार्जित करते हुए निरंतर समृद्ध हों, किंतु अहंकार में साथियों के सहयोग की उपेक्षा या अवगणना न करें। यह नीति टीम भावना के साथ कार्य करने, साथियों से उनकी योग्यता व क्षमता के अनुसार काम लेने तथा उनके प्रयासों को सामूहिक ध्येय सिद्धि की दिशा में ले जाने तथा प्रशिक्षुओं की नेतृत्व शक्ति को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। कथानक में वर्णित विषम परिस्थितियों में भी धैर्य धारण करने की शिक्षा एवं निरंतर अभ्यास की वृत्ति न केवल व्यक्ति की सफलता के द्वार खोलती है, अपितु अस्तित्व के संरक्षण के साथ उसके व्यक्तित्व का चहुँमुखी विकास कर सकती है।

शिक्षण जगत में सकारात्मक दृष्टिकोण से द्वैधी चाल का अभिगम प्रायः यत्र-तत्र उपयोग में देखा जाता है। यथा विद्यार्थी के हित में शिक्षक को नारियल की उपमा दी जाती है, जो ऊपर से कठोर तथा अंदर से मुलायम होता है, विद्यार्थी को अनुशासित रखकर ध्येय सिद्धि की ओर ले जाता है। वहीं कठिन परिस्थितियों में वह उसका दामन

नहीं छोड़ता। शिक्षण संस्था संचालक या प्रमुख जब अपने स्टॉफ के साथ काम करता है तो वह सकारात्मक रूप में इस नीति को अपनाकर संस्थान की नींव सुदृढ़ कर सकता है तथा संस्था के विरुद्ध चलने वाले खतरों से सावधान रहते हुए उपयुक्त समय पर उपयुक्त उपाय कर सकता है। संस्थाओं के मध्य समन्वय को लेकर सकारात्मक स्वरूप में इस नीति को अपनाया जा सकता है तथा शैक्षणिक गुणवत्ता सुधार हेतु पारस्परिक क्षमतावर्धन किया जा सकता है। उच्च शिक्षण संस्थानों में 'फैकल्टी एक्सचेंज' का कार्यक्रम बनाया गया है। यदि संस्था उदारतापूर्वक इसे स्वीकार करती है तो समूचे शिक्षण जगत को बेहतर तरीके से लाभान्वित कर सकती है।

समूचे शिक्षण जगत में विशेषकर विद्यार्थियों को निरंतर प्रयास करने की सीख प्रदान करने वाली उपरोक्त नीति अत्यंत उपयोगी प्रतीत होती है। शिक्षण संस्थान भी इस नीति पर अमल कर नवप्रवर्तन व गुणवत्तापूर्ण शोध के प्रयासों में निरंतरता बनाए रखें, उन्हें किसी भी परिस्थिति में अवरुद्ध न होने दें ताकि विद्यार्थी, समाज व राष्ट्र समन्वित रूप से लाभान्वित होकर सफलता के नए आयाम स्थापित कर सकें।

स्थिरजीवी ने अपने परम प्रतिस्पर्धी किंतु दिखावटी मित्र उल्लूराज को अपनी तथाकथित दुर्दशा की कथा विस्तार से कह सुनाई कि आपके द्वारा असंख्य कौओं के मारे जाने पर राज मेघवर्ण ने आप पर चढ़ाई करने की योजना बनाई, किंतु मेरे द्वारा यह समझाने पर कि उसे आपके जैसे बलवान प्रतिस्पर्धी पर आक्रमण नहीं करना चाहिए, वह मुझे आपका हितैषी और अपना प्रतिस्पर्धी मानने लगा और मेरी यह दुर्दशा कर दी। नीति कहती है—

बलवन्तं रिपुं दृष्टवा सर्वस्वमपि बुद्धिमान्।
दत्त्वा हि रक्षयेत् प्राणान् रक्षितैस्तैर्धनं पुनः।।159।।
पंचतंत्र तृतीय खंड

अर्थात बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि अपने से बलवान प्रतिस्पर्धी को देखे तो अपना सर्वस्व देकर भी प्राणों की रक्षा कर ले। एक बार यदि जान बच गई तो धन बाद में भी आ जाएगा। कहा भी गया है 'जान है तो जहान है।' किंतु उसने मेरी एक नहीं मानी। अब मैं आपकी शरण लेना चाहता हूँ और अधिक क्या कहूँ जब मैं चलने-फिरने लायक थोड़ा स्वस्थ हो जाऊँगा तब मैं स्वयं आपको प्रतिस्पर्धी के ठिकाने पर ले जाऊँगा और उसके सर्वनाश में आपका सहभागी बनूँगा।

प्रतिस्पर्धी पक्ष की मंत्रणा—बहुमत बनाम उचित मत

प्रतिस्पर्धी पक्ष के स्थिरजीवी की व्यथा सुनकर अरिमर्दन ने अपने पाँच मंत्रियों— रक्ताक्ष, क्रूराक्ष, दीप्ताक्ष, वक्रनास और प्राकरकर्ण से मंत्रणा की कि प्रतिस्पर्धी पक्ष का एक मंत्री हमारे कब्जे में आ गया है तो अब हमें क्या करना चाहिए?

रक्ताक्ष ने कहा कि, इसमें विचारने की कतई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि नीति कहती है—

हीनः शत्रुः निहन्तव्यो यावन्न बलवान भवेत्।
प्राप्तस्वपौरुषबलः पश्चात् भवति दुर्जयः।।160।।
पंचतंत्र तृतीय खंड

अर्थात जब प्रतिस्पर्धी कमजोर हो तभी उसे मार देना चाहिए, अन्यथा बलवान होने पर वह अजेय हो

जाता है। ऐसा सुअवसर बार-बार नहीं आता। अतः हमें ऐसा अवसर नहीं गँवाना चाहिए। प्रतिस्पर्धी द्वारा फैलाए गए लोभ के जाल को भली-भाँति पहचानकर उससे बचने का प्रयास कर लेना ही उचित है।

इस नीति पर अमल करते हुए शिक्षण जगत के सभी पक्षकारों को चाहिए कि वे व्यवस्था में पनप रहे दूषणों व विकृतियों को समय रहते पहचानें एवं पूरी ताकत, संकल्प, ईमानदारी व निष्ठापूर्वक प्रयासों के माध्यम से समय रहते उन्हें दूर करें। संस्था का वातावरण इतना सुगम हो कि सभी अपने अवगुणों की पहचान स्वयं करें तथा अन्य सदस्य सहृदयता के साथ दूर करने में सहायक बनें तथा हर हाल में लोभ लालच से बचें।

कहते हैं कि अति लोभ के परिणामस्वरूप मित्रता टूट जाती है। इस तरह प्रतिस्पर्धी से मित्र बन रहे व्यक्ति पर किसी तरह विश्वास करना उचित नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार अति लोभ के कारण मित्रता टूट जाती है, उसी प्रकार क्षमता के बाहर संस्था का विस्तार करते जाने पर गुणवत्ता का ह्रास हो जाता है।

दूसरे मंत्री क्रूराक्ष ने पहले मंत्री से असहमति व्यक्त करते हुए कहा कि महाराज शरणागत को नहीं मारा जाता, अपितु उसका उचित आदर सत्कार किया जाता। (आदर्शों की रक्षा सर्वस्व समर्पित करके भी करनी चाहिए तभी शिक्षण संस्थाएँ ध्येय सिद्धि के प्रति अपनी कटिबद्धता प्रदर्शित कर सकती हैं। गांधीजी ने साधन शुद्धि व ध्येय शुद्धि के संदर्भ में स्पष्ट करते हुए कहा है कि सच्चे ध्येय की प्राप्ति के लिए, सही साधनों का प्रयोग अनिवार्य है। नीम का बीज बोकर आम के फल की आकांक्षा नहीं की जा सकती।)

यह सुनकर तीसरे मंत्री दीप्ताक्ष ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि देव, इसे नहीं मारना चाहिए, क्योंकि कभी-कभी बुरा करने वाले का भी भला हो जाता है। इसलिए जो हमारे प्रतिस्पर्धी से तिरस्कृत होकर आया है, वह हमारे लिए लाभदायक ही रहेगा और हमें प्रतिस्पर्धी पक्ष की कमजोरियों की जानकारी देगा।

उसके मंत्री वक्रनास का भी मत था कि शरणागत को नहीं मारा जाना चाहिए, क्योंकि कभी-कभी आपस में लड़ते हुए प्रतिस्पर्धी भी हितकारी होते हैं।

एक और मंत्री प्राकरकर्ण का भी यही मत था कि इसका वध नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि इसकी रक्षा करने से तनाव कम हो सकता है। नीति कहती है कि प्रतिस्पर्धियों को एक-दूसरे के गुप्त राज सभी के सामने उजागर नहीं करने चाहिए, वरना किसी तीसरे द्वारा दोनों का सर्वनाश होने में देर नहीं लगती। अतः हमें प्रतिस्पर्धी पक्ष से अपनी शरण में आए मंत्री की रक्षा करनी चाहिए।

निर्णय की परिणति पर विश्लेषणात्मक चिंतन

उल्लुओं का राजा अरिमर्दन रक्ताक्ष के अतिरिक्त अन्य सभी मंत्रियों के मत व दलीलों से सहमत हुआ। किंतु कुशल व अनुभवी राजनीतिज्ञ रक्ताक्ष को अतर्कसंगत बातों पर सबकी सहमति से काफी खेद हुआ। नीति में कहा गया है कि जिस देश में अपूज्य व्यक्तियों की पूजा होती है या पूज्य व्यक्तियों का

अपमान होता है, वहाँ अकाल, महामारी या अग्नि आदि उपद्रव फैलते हैं। उसे प्रतिस्पर्धी पक्ष के मंत्री का यूँ कब्जे में आ जाना सहज नहीं लग रहा था। उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। उसके मीठे लुभावने शब्द जाल में फँसने से स्वयं को बचाना ही हितकर है। क्योंकि कोई भी अंततः अपनी जाति या समूह के मूल स्वभाव की ओर ही आकर्षित होता है।

शैक्षणिक संस्थानों के सुयोग्य प्रशासन में इस नीति की प्रासंगिकता व सार्वभौमिकता स्पष्ट दिखाई देती है। यदि संस्थान अपनी व्यवस्थाओं का सुव्यवस्थित संचालन बनाए रखना चाहते हैं, तो प्रलोभनों से बचते हुए वस्तुस्थिति को पहचानें और सच्चाई को प्रोत्साहित करें। इसी प्रकार शिक्षक समुदाय से भी इस नीति के पालन की अपेक्षा की जाती है, ताकि वे आत्म-अनुशंसा तथा अल्पकालिक प्रलोभनों से भ्रमित व प्रभावित न होकर चरित्रवान, अनुशासित व योग्य विद्यार्थी शक्ति के निर्माण में अपना योगदान सुनिश्चित कर सकें।

किंतु उल्लूराज अपने वयोवृद्ध मंत्री रक्ताक्ष की सलाह की परवाह न करते हुए स्थिरजीवी को अपने दुर्ग में ले गए। स्थिरजीवी ने हँसते हुए अपने मन में कहा कि वास्तव में रक्ताक्ष ही राज्य का सच्चा हितैषी और नीतिज्ञ है, जिसने मुझे मार डालने की सलाह दी। उल्लुओं के राजा अरिमर्दन ने अपने सेवकों को आदेश दिया कि स्थिरजीवी हमारे हितैषी हैं, इनका ध्यान रखा जाए, ये चाहे जैसे रहें।

"स्थिरजीवी ने विचार किया कि यदि मैं दुर्ग के अंदर रहते हुए इनके विनाश की योजना बनाता हूँ तो मेरे हाव-भाव से अथवा कभी असावधानीवश मेरा राज प्रकट हो सकता है। इससे मुझ पर और मेरे कुल पर संकट आ सकता है तथा मेरा उद्देश्य पूरे हुए बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो सकता हूँ। इसलिए दुर्ग के द्वार पर रहकर मेरे लिए लक्ष्य सिद्ध करना आसान होगा। ऐसा सोचकर उसने उल्लूराज से कहा कि मेरा दुर्ग के भीतर रहना उचित नहीं होगा, भले मैं आपका भक्त, हितैषी और विश्वासपात्र हूँ, किंतु प्रतिस्पर्धी पक्ष से आया हुआ हूँ। इसलिए यदि आप आज्ञा दें, तो मैं दुर्ग के द्वार पर रहना पसंद करूँगा, ताकि आते-जाते प्रतिदिन आपकी चरण रज लेकर स्वयं को आपकी सेवा से धन्य करता रहूँगा।" उल्लूराज उसके स्वप्रशंसा व चापलूसी भरे झांसे में आ गया। अब उल्लूराज की मेहरबानी से उसे प्रतिदिन अच्छा भोजन मिलने लगा, इससे थोड़े ही दिनों में वह हष्टपुष्ट हो गया।

कर्तव्यनिष्ठ मंत्री द्वारा राजा और राज को बचाने की अंतिम नसीहत...

इस तरह की खातिरदारी से रक्ताक्ष को अंदर से बहुत गुस्सा आने लगा था और आश्चर्य भी हो रहा था। उसकी सीख सर्व कल्याणकारी होने के बाद भी उपेक्षित हो रही थी, तथापि राजधर्म निभाते हुए उसने राजा को सावधान किया।

'पंचतंत्र' के रचनाकार ने इस कथानक के माध्यम से विविध संस्थानों के संचालकों को भी सीख देने का प्रयास किया है कि वे अनुचित प्रशासनिक व्यवहारों पर अंकुश रखें, चापलूसों को अपने आस-पास एकत्रित न होने दें, छद्म व क्षणिक वाहवाही पाने के लालच में संस्थानीय प्रशासकीय व्यवहारों को दूषित न करें। वे यह भली-भाँति समझ

लें कि शासक या शासन बदलने से दशा-दिशा नहीं बदलती अपितु नीतिगत प्रतिमानों के प्रति निष्ठा से शैक्षणिक-सामाजिक क्रांति का सूत्रपात किया जा सकता है। अन्यथा चापलूसों की जमात तो "फूट डालो राज करो" चुगली व खोटी प्रशंसा करने की दुर्नीति को अपनाकर, चने के पेड़ पर बैठाकर येनकेन प्रकारेण अपना उल्लू सीधा करने में लगी रहती है। उसे संस्था के अस्तित्व या संस्था के हितों से कोई सरोकार नहीं होता। जब राजा परिणामों पर विचार किए बिना अनुचित निर्णय लेने लगे, नीर-क्षीर का विवेक न रख सके, तब उसका साथ शीघ्र छोड़कर चले जाना चाहिए। अतः रक्ताक्ष ने अपने अनुचरों के साथ वह स्थान छोड़ने का निर्णय कर लिया। कहा भी है—

न दीर्घदर्शिनो यस्य मन्त्रिणः स्युः महीपते।
क्रमायाता ध्रुवं तस्य न चिरात् स्यात् परिक्षय:।।174।।
पंचतंत्र तृतीय खंड

जिस राजा के पास दूरदर्शी पुश्तैनी मंत्री नहीं होते, उसका विनाश निश्चित रूप से शीघ्र ही हो जाता है।

स्थिरजीवी की प्रतिस्पर्धी के गढ़ में व्यूह रचना

स्थिरजीवी ने सोचा कि अब मेरा कार्य और आसान हो गया है, क्योंकि इसके पास यही एक दूरदर्शी नीतिज्ञ था, जिसने इसे छोड़ दिया। जो मंत्री राजा और राज्य का हित न देखकर अनुचित सलाह देते हैं, उन्हें मंत्री के रूप में प्रतिस्पर्धी ही समझना चाहिए। उल्लूराज की इसी मनोवृत्ति का लाभ उठाकर स्थिरजीवी घोंसला बनाने के बहाने दुर्ग के बाहर लकड़ियाँ इकट्ठी करता रहा और एक दिन सूर्यास्त के बाद जब उल्लुओं को दिखना बंद हो जाता है तो उड़कर अपने सरदार मेघवर्ण के पास पहुँचकर बोला कि मैंने प्रतिस्पर्धी के सर्वनाश की पूरी तैयारी कर दी, आप वहाँ चलकर अपने हाथों से प्रतिस्पर्धी का शीघ्र विनाश कर दीजिए। क्योंकि नीति कहती है—

शीघ्रकृत्येषु कार्येषु विलम्बयति यो नरः।
तत्कृत्यं देवतायस्तस्य कोपात् विघ्नन्ति असंशयम्।।176।।
पंचतंत्र तृतीय खंड

अर्थात जो मनुष्य तत्काल पूरे किए जाने वाले कार्य को भी लटकाए रखता है, वह उसे कभी पूरा नहीं कर पाता। उसकी इस आदत से अप्रसन्न होकर देवता भी उसके कार्य में विघ्न डालते हैं। यह भी सीख दी गई है कि जिस कार्य का फल शीघ्र मिलने वाला हो, उस कार्य में विलंब करने पर उसका रस काल देवता पी जाते हैं।

इस नीति से विद्यार्थियों को यह सीख मिलती है कि विद्यार्थियों को समय पर अपने विद्यालय से मिले गृहकार्यों को पूरा करना चाहिए अथवा समय पर परीक्षा की तैयारी करनी चाहिए जिससे विद्यार्थियों में समय पर कार्यों को करने की अच्छी आदतों का विकास हो सके।

इस प्रकार स्थिरजीवी अपने सरदार मेघवर्ण से कहता है कि आप प्रतिस्पर्धी की गुफा को जलाकर अपना मनोरथ पूर्ण कीजिए बाकी कथा कुशलक्षेम वापस आकर विस्तार से बताऊँगा।

मेघवर्ण दलबल के साथ उल्लुओं की गुफा के बाहर जा पहुँचा, जलती हुई लकड़ी वहाँ डालकर

उल्लुओं की जीवित चिता उनके ही दुर्ग में बना दी। कार्य संपन्न होने पर अर्थात अपने परम प्रतिस्पर्धी उल्लुओं का समूल विनाश हो जाने के बाद मंत्री स्थिरजीवी ने अपने राजा मेघवर्ण को कहा कि प्रतिस्पर्धियों के बीच रहना यद्यपि तलवार की धार पर चलने के समान है, किंतु उनके द्वारा अपने ही विद्वान, नीतिज्ञ मंत्री रक्ताक्ष की उपेक्षा ने मेरा आत्मविश्वास बढ़ा दिया क्योंकि उसकी अनुभवी निगाहों ने पहली बार में ही जान लिया था कि मेरे अंदर कैसी बदले की आग सुलग रही है। रक्ताक्ष के अतिरिक्त बाकी सब तो महामूर्ख और नाम के ही मंत्री थे। नीति कहती है—

लुब्धस्य नश्यति यशः पिशुनस्य मैत्री,
नष्टक्रियस्य कुलं अर्थपरस्य धर्मः।
विद्याफलं व्यसनिनः कृपणस्य सौख्यं,
राज्यं प्रमत्तसचिवस्य नराधिपस्य।।179।।
पंचतंत्र तृतीय खंड

अर्थात लोभी व्यक्ति का यश नष्ट हो जाता है, चुगलखोर की मित्रता नष्ट हो जाती है, निन्यान्वे के चक्कर में फँसे हुए का धर्म नष्ट हो जाता है, जुए आदि व्यसनों में फँसे हुए व्यक्ति की विद्या तथा शक्ति नष्ट हो जाती है, कंजूस व्यक्ति का सुख नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार दुष्ट और असावधान मंत्रियों वाले राजा का राज्य नष्ट हो जाता है।

इस नीति को शैक्षणिक संस्थाओं के संदर्भ में प्रक्षेपित करें तो हम पाते हैं कि गलत तरीके व अनैतिक व्यवहार अपनाने से संस्था की शक्ति व नैतिकता समाप्त हो जाती है। संचालकों को चाहिए कि वे संस्थाओं को साधन संपन्न बनाएँ, अभौतिक ज्ञान चरित्र की संपदा से सुसज्जित करें, जड़ता से दूर रहकर जड़ों से जुड़ने के प्रयत्न में रत रहें, नहीं तो वैयक्तिक व सामूहिक सुख दोनों ही बाधित होते हैं।

नीति से विभूषित महापुरुष आरंभ किए गए कार्य को बार-बार विघ्न आने पर भी बीच में नहीं छोड़ते, नीच लोग विघ्नों के भय से कार्य को आरंभ ही नहीं करते, जबकि मध्यम कोटि के लोग विघ्न आने पर कार्य बीच में ही छोड़ देते हैं। विपत्ति के समय धैर्य रखते हुए युक्ति से युक्त होकर, उन कार्यों को करने के लिए भी तत्पर हो जाना चाहिए, जो आपके स्वभाव के प्रतिकूल हो। यदि भविष्य में इससे कार्य सिद्धि की आशा हो।

समन्वित शैक्षणिक परिवेश एवं व्यावसायिक दक्षता सिद्धि की दिशा में काकोलूकीयम प्रकरण और प्रबंधकीय व्यूह रचना

काकोलूकीयम प्रकरण दो समूहों के मध्य अस्तित्व की लड़ाई है, जिसमें एक समूह ताकतवर व साधन संपन्न होते हुए भी उपयुक्त व्यूह रचना के अभाव में न केवल युद्ध हारता है, अपितु अपना सर्वनाश करा लेता है। 'पंचतंत्र' के काकोलूकीयम प्रकरण के विश्लेषण से संतुलित समन्वित शैक्षणिक परिवेश एवं असरकारक व्यावसायिक व्यूह रचना निर्माण की जिसे निम्नलिखित मुख्य बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है—

1. ***स्वस्थ प्रतिस्पर्धा में टिके रहने हेतु योजना बनाने व कार्यान्वित करने से पूर्व साधन-संसाधन एवं वातावरणीय घटकों का विश्लेषण***— शिक्षण संस्थान विकास योजना बनाते समय अपने आस-पास के वातावरण का

यथोचित विश्लेषण कर लें, तो वर्तमान व भावी चुनौतियों का सामना करने हेतु कारगर योजना का निर्माण कर सकते हैं। गुणवत्तायुक्त शिक्षण की सुनिश्चितता के इस दौर में अपनी प्रतिष्ठा व अस्तित्व को टिकाए रखने के लिए संस्थाओं को अन्य संस्थाओं की तुलना में बेहतर निर्णय लेने होते हैं। इसलिए आयोजन के समय अपने साधन-संसाधनों के विश्लेषण के साथ प्रतिस्पर्धी संस्था की क्षमताओं का भी स्वॉक (SWOC) विश्लेषण (सुदृढ़ और कमजोर पहलुओं का) अवश्य कर लेना चाहिए। 'पंचतंत्र' के कथापात्र दुर्गपति उल्लूराज ने इस घटक की उपेक्षा की और अपने सर्वनाश को आमंत्रित कर लिया। अस्तित्व संरक्षण के लिए यह नीति उपयोगी शिक्षण व शिक्षणोत्तर गतिविधियों के आयोजन में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती है, विद्यालय व विद्यार्थियों को प्रतिस्पर्धी लक्ष्य के निकट पहुँचा सकती है। 'पंचतंत्र' कथानकों के आधार पर कहा जा सकता है कि सक्षम और साधन संपन्न होते हुए भी प्रतिस्पर्धी संस्था के साथ बेवजह टकराव कर साधन व ऊर्जा को व्यर्थ नहीं करना चाहिए और न ही प्रतिस्पर्धी को कमतर आँकने की भूल करनी चाहिए।

2. ***कर्मचारी व्यवस्थापन हेतु साम-दाम-दंड-भेद नीतियों का विवेकपूर्ण उपयोग***— 'पंचतंत्र' के काकोलूकीयम खंड में संधि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय व द्वैधीभाव इन छह प्रशासकीय नीतियों की चर्चा की गई है, जिनका अमलीकरण समय व परिस्थिति के अनुकूल करना चाहिए। भारतीय संस्कृति के अन्य स्वरूपों में इसे 'साम-दाम-दंड-भेद' नीति के रूप में वर्णित किया गया है। सामान्य रूप से 'साम' नीति का प्रयोग अपेक्षित होता है, क्योंकि सरलता किसी भी संगठन में साथी कर्मचारियों के कार्यकारी सहयोग को प्रोत्साहित करती है। किंतु जब कर्मचारी शिक्षण संस्थान व शिक्षण व्यवस्था को होने वाले नुकसान की परवाह किए बिना, अनुचित व्यवहार करते हैं, तब संधि और विग्रह नीति को अपनाकर शैक्षणिक वातावरण को अनुकूल बनाया जा सकता है। 'पंचतंत्र' तृतीय खंड के सूत्र संख्या 138 में कहा गया है कि विपरीत स्थितियाँ उत्पन्न होने पर बलवान के साथ संधि करते हुए संस्थान के अस्तित्व को बचा लेना ही श्रेयस्कर होता है। किंतु यदि उपद्रवियों को दंड से वश में करना संभव हो तो अनुशासित प्रशासन का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए, कठिन कदम उठाना संस्था के कार्य वातावरण निर्माण के लिए उचित होता है। इस प्रकार जब 'साम' 'दाम' और दंड नीतियाँ कारगर न हों, तो वहाँ 'भेद नीति' का प्रयोग करना चाहिए, जो मानव संसाधन संस्था के हित में साथ नहीं होता, उसे भेद नीति के द्वारा उद्देश्य प्राप्ति हेतु उसकी क्षमताओं का उपयोग सुनिश्चित किया जा सकता है। 'पंचतंत्र' का कथानक स्पष्ट करता है कि प्रतिस्पर्धी और रोग की उपेक्षा करना संस्था के स्वास्थ्य के हित में नहीं होता। समय रहते उसकी पहचान, निदान एवं नीति सम्मत दीर्घगामी समाधान कर लेना ही उचित होता है।

3. ***संगठन के मिशन व ध्येय को सदैव सर्वोपरि रखें तथा नीतिमत्तात्मक मुद्दों में कोई समझौता न अपनाने की नीति***— संगठन यद्यपि व्यक्तियों का समूह है, व्यक्तियों के लिए व्यक्तियों द्वारा संचालित है तथापि उसका अपना पृथक संवैधानिक व सैद्धांतिक ढाँचा होता है, जिसकी अक्षुण्णता को बनाए रखना अनिवार्य है। शिक्षक-विद्यार्थी-प्रशासक इस व्यवस्था के अंग हैं, किंतु इन सबसे ऊपर संस्था के अपने ध्येय हैं, जिनके साथ समझौता नहीं होना चाहिए। कथानक सिद्ध करते हैं कि ऐसा होने पर कुल का समूल विनाश निश्चित हो जाता है। संस्था का अपना दर्शन, अपना आदर्श व संचालन मूल्य होता है, इसे बनाए रखने हेतु सावधानी व प्रतिबद्ध प्रयास अनिवार्य हैं। थोड़ी-सी असावधानी होने पर स्वार्थी तत्व व्यवस्था पर अपना नियंत्रण करके संस्था की दुर्गति कर देते हैं। मंत्री रक्ताक्ष की सर्वकल्याणकारी उचित सीख की उपेक्षा तथा चापलूसों के बहुमत के अंधानुकरण के परिणामस्वरूप ही शक्तिशाली उल्लूराज का सर्वनाश हुआ था।

संगठन की प्रतिष्ठा के लिए नुकसान होने पर भी नैतिक नीतिमत्ता को बनाए रखना एक सफल व्यूह रचना मानी जाती है, क्योंकि आर्थिक नुकसान की भरपाई हो सकती है, किंतु ध्येय व मिशन से प्रयासों से दूरी क्षम्य नहीं हो सकती है। किसी कार्य को बीच में छोड़ना तथा लक्ष्य व गुणवत्ता से समझौता करना, किसी भी स्थिति में उचित नहीं माना जाता है। नीति को छोड़ने पर मिलने वाली सफलता को ठुकरा देने का साहस पैदा करना सच्चे पुरुषार्थी का कार्य है। इसलिए यह आवश्यक है कि नीति और नैतिकता का अस्तित्व व्यूह रचना के केंद्र में हो।

4. ***प्रतिकूल परिस्थिति होने पर पीछे हटने की व्यूह रचना का अनुकरण***— यह नीति शैक्षणिक क्षेत्र जैसे सेवा संस्थानों एवं लाभ कमाने वाले व्यावसायिक संस्थानों पर समान रूप से लागू की जा सकती है। इस नीति को अपनाकर विद्यार्थी अपनी शक्तियों को संचित करते हुए कार्यक्षमता व कार्यकुशलता में वृद्धि की ओर अग्रसर हो सकता है और स्पर्धाओं में वांछित सफलता अर्जित कर सकता है।

5. ***लोभ, चुगलखोरी और व्यसन आदि से मुक्त होना***— संस्थाओं, शिक्षकों, विद्यार्थियों को अति महत्वाकांक्षा अथवा लोभ आदि से बचकर रहना चाहिए क्योंकि लोभी का यश, चुगलखोरों की मित्रता, व्यसन से विद्या, कंजूसी से सुख तथा असावधानी से राज्य तक चला जाता है। समुचित प्रबंधन की दिशा में संचालकों का स्वयं का आत्मबल व आत्मविश्वास, चरित्र तथा मित्रों का सहयोग अनिवार्य घटक हैं, जिनके प्रति सचेत रहकर सफलता सुनिश्चित की जा सकती है।

6. ***आलसरहित सन्निष्ठ व्यक्ति को ही अपना नेता या संचालक चुनने के आदर्श का अनुसरण***— शिक्षण संस्थानों के प्रशासन में नेतृत्व का दूरदर्शी, सजग, आलस्य रहित होना अनिवार्य है, तभी वह संस्थान को लक्ष्य सिद्धि की दिशा में ले जा सकता है। 'भारतीय संस्कृति साहित्य' में कहा गया है कि 'कथनी की बजाए करनी' अधिक प्रभावशाली होती है। नेता की

कर्मठता व कर्मशीलता ही अनुयायियों को आदर्श मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे सकती है।

7. ***व्यक्तिगत प्रतिशोध या महत्वाकांक्षा की आड़ में संस्था के अस्तित्व से खिलवाड़***— नीति शिक्षण संस्थानों के संचालक कई बार इस नीति की अवहेलना करते हुए संस्था के अस्तित्व को खतरे में डाल देते हैं और अपने व संस्थान के स्थापित आदर्शों के विनाश का कारण स्वयं बन सकते हैं। यह विनाश संचालकों व शिक्षण संस्था से जुड़े उन अन्य पक्षकारों की आँखों के समक्ष होता है, जो विवशतावश उस समय मौन रह जाते हैं। जब उन्हें बोलना चाहिए होता है, वे सच नहीं बोलते हैं। प्रतिशोध या महत्वाकांक्षा की राह में संस्थानीय आदर्श ह्रास न हो जाए, इसके प्रति सावधान रहना अनिवार्य है। अपने से अधिक ताकतवर प्रतिस्पर्धी से हाथ मिलाने पर वह आपके प्रतिस्पर्धी को तो समाप्त कर सकता है, किंतु उसके बाद वह आपके अस्तित्व को नुकसान पहुँचा सकता है।

8. ***संगठन के सदस्यों की भागीदारी, वयोवृद्ध अनुभवी सदस्यों का सम्मान, बड़ों की सीख को समझने, स्वीकार करने की व्यूह रचना अपनाना***— यह नीतिगत व्यूह रचना सभी प्रकार के संगठनों व संस्थाओं के संचालन में समान रूप से उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इससे उनके अनुभव का लाभ संगठन को मिलेगा, लोक संतुष्टि में वृद्धि होगी, पहलवृत्ति व नवाचारों को प्रोत्साहन मिल सकेगा, रचनात्मकता व सकारात्मकता में वृद्धि होगी। हमें बहुमत नहीं बल्कि उचित मत का स्वागत करना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति, अपने गुरुजनों व हितैषियों से पूछकर कोई कार्य करता है तो उसके कार्य में कोई विघ्न नहीं आते। प्रबंधकों को चाहिए कि वे कर्मचारियों की निष्ठा व विश्वसनीयता की जाँच करते समय सावधान रहें। मनोभाव से उसकी छिपी मंशा को जानने का प्रयास करना चाहिए, किंतु हर समय उन्हें नकारात्मक दृष्टिकोण से नहीं देखना चाहिए।

9. ***भयजनित विपरीत परिस्थितियों में भी नीर-क्षीर का विवेक बनाए रखने की व्यूह रचना***— संस्थान के प्रबंध संचालकों को भयजनित व विपरीत परिस्थितियों में भी अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होना चाहिए तथा नीतिमत्ता से कोई समझौता किए बिना, उचित-अनुचित विवेक बनाए रखना चाहिए, क्योंकि विजय सत्य की ही होती है। प्रबंधकों को चाहिए के वे 'प्रतिक्षा करें और देखें' (वेट एंड वॉच) की नीति पर अमल करें, सही अवसर की प्रतीक्षा करें, हाथ में आए अवसर को न जाने दें तथा शुभस्य शीघ्रं की व्यूह रचना पर अमल करें। शिक्षण संस्थानों को चाहिए कि वे विषम व अनिश्चित परिस्थितियों में निर्णय लेने को टालें। प्रबंधशास्त्र कहता है कि कभी-कभी निर्णय न लेना भी श्रेष्ठ निर्णय साबित होता है, क्योंकि इस दौरान परिस्थितियाँ सामान्य हो जाती हैं तब अधिक असरकारक निर्णय लिया जाना संभव हो पाता है। प्रबंधन के विद्यार्थी अध्येता अवसरों की पहचान करना सीखें, उचित समय पर प्रतिभाव दें तो बेहतर परिणाम सुनिश्चित हो सकते हैं तथा अवांछित परिस्थितियों को टाला जा सकता है।

उपसंहार—समावेशी गुणवत्तापूर्ण शिक्षण सुनिश्चित करने एवं समतामूलक समाज के निर्माण में 'पंचतंत्र' के नीतिमत्तायुक्त कथानक...

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 व्यक्ति व समाज के समग्र व समावेशी विकास की शिक्षा के लक्ष्य को प्रमुखता देती है। 'पंचतंत्र' के कथानक व नीतिवाक्य शिक्षण संस्थानों को युक्तियुक्त व नीतिमत्तापूर्ण संचालन की सूझबूझ प्रदान करते हैं कि किस परिस्थिति में किस प्रकार का व्यवहार उचित है। संचालकों की मंशा व कर्तव्यनिष्ठा की दिशा क्या होनी चाहिए, ताकि वे संगठन के अस्तित्व को संरक्षित करते हुए उसे विद्यार्थी अनुरूप बना सकें और विद्यार्थी जीवन के विविध क्षेत्रों में इनका उपयोग करते हुए समस्याओं और चुनौतियों से बाहर निकल सकें तथा व्यूहात्मक निर्णयों को आकार दे सकें। 'पंचतंत्र' के कथानक शारीरिक-मानसिक कौशल्य, तार्किक विचारशक्ति एवं विविधलक्षी ज्ञान के वाहक हैं, जो कि *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* के केंद्र बिंदु हैं।

'पंचतंत्र' एक नीतिशास्त्र है और नीति का अर्थ है— जीवन में बुद्धिपूर्वक व्यवहार करना, चतुरता या धूर्ततापूर्वक नहीं। 'पंचतंत्र' का शिक्षण व व्यवसाय के क्षेत्र में प्रयोग विविध हितधारकों को चिंतन-मनन करने के लिए नूतन दृष्टिकोण प्रदान करता है। नीति कहती है कि एक कुशल संचालक को अच्छी तरह भली-भाँति विचार करके ही किसी कार्य को अमल में लाना चाहिए। आधी-अधूरी जानकारी या तैयारी के आधार पर किए गए प्रयास सभी के लिए परेशानी का कारण बनते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में महात्मा गांधीजी के सर्वोदयी शिक्षा दर्शन के अनुरूप जिन स्वावलंबी, रचनात्मक नवोन्मेषी समाज के निर्माण के घटकों की बुनियाद विद्यालय पूर्व शिक्षण, विद्यालयी शिक्षण, माध्यमिक शिक्षण, उच्च-माध्यमिक शिक्षण तथा विश्वविद्यालयी आदि शैक्षणिक स्तरों पर रखी गई है, उसे सुनियोजित रूप से क्रियान्वित करने में 'पंचतंत्र' की कथाएँ इस व्यवस्था से जुड़े समस्त हितधारकों को नूतन व्यवस्थापकीय दृष्टिकोण प्रदान करती हैं, जिसमें विविधतापूर्ण शिक्षा प्राप्ति की स्वतंत्रता, समाजोपयोगी कौशल्य विकास, नवप्रवर्तन, शोध एवं विकास के महत्वाकांक्षी प्रतिमान समाहित हैं। इसके माध्यम से शिक्षण व्यवस्था से प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से जुड़े विविध पक्षकारों—शिक्षण संस्थान, शिक्षक, विद्यार्थी, संचालक, अभिभावक, समाज तथा कौशल्य प्रशिक्षण व रोजगार सृजन में सहयोगी औद्योगिक इकाइयों आदि की सार्थक सहभागिता व अभिनव पहल की अपेक्षा की गई है, ताकि सभी पक्षों के समन्वित व सुसंगठित प्रयासों के माध्यम से शिक्षण जगत वर्तमान व भावी चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना कर सके और राष्ट्र को पुनः विश्वगुरु के रूप में स्थापित कर सके।

यदि सभी हितधारक सोद्देश्य अर्थात सहभागी, परिणाम उन्मुख प्रबंधन अभिगम को आत्मसात कर स्पष्ट समझ, जागृति, निष्ठा, नैतिकता व समर्पण के भाव के साथ शिक्षण संस्थान प्रबंधन व्यवस्था का हिस्सा बनते हैं और खेल-खेल में श्रेष्ठ संचालकीय नीतियों का ज्ञान प्राप्त करते हैं, और उन नीतियों को उसे लोक-कल्याणकारी व्यवहार के अनुरूप निरूपित

कर निर्णयन क्षमता को गहन तथा अपनी भूमिका को प्रभावी बना पाते हैं तो निश्चित रूप से शिक्षा अपने 'सा विद्या या विमुक्तये' के ध्येय वाक्य को सार्थक कर सकती है तथा सभ्य समाज का निर्माण कर श्रमसाध्यता, कौशल्यों का चहुँमुखी विकास, कला-हुनरधारकों का सम्मान, आत्मनिर्भरता, प्रेम, संवेदना, दया व सामाजिक सौहार्दपूर्ण सच्चा स्वराज ला सकती है।

संदर्भ

जैन, लोकेश और महेश नारायण दीक्षित. 2021. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं गांधी दर्शन*. डोर्स पब्लिकेशंस, नई दिल्ली.

मानव संसाधन विकास मंत्रालय. 2020. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020.* भारत सरकार, नई दिल्ली.

शर्मा, विष्णु. 2015. *पंचतंत्र मानव जीवन का ज्ञानकोश.* संकलन-कृष्णदत्त, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि., दरियागंज, नई दिल्ली.

12 जून 2023 को https://www.hindikahani.hindi-kavita.com/HK-Panchtantra.php से प्राप्त किया गया. (पंचतंत्र की संपूर्ण कहानियाँ- हिंदी कहानी— पाँच अलग-अलग खंडों में)

12 जून 2023 को https://www.hindisahityadarpan.in/2016/06/panchatantra-complete-stories-hindi.html से प्राप्त किया गया. (पंचतंत्र की संपूर्ण कहानियाँ — हिंदी साहित्य मार्गदर्शन)